जनचेतना का प्रगतिशील कथा-मासिक

ISSN 2454-4450

मूल्य ₹ 75

हंस

जून 2026

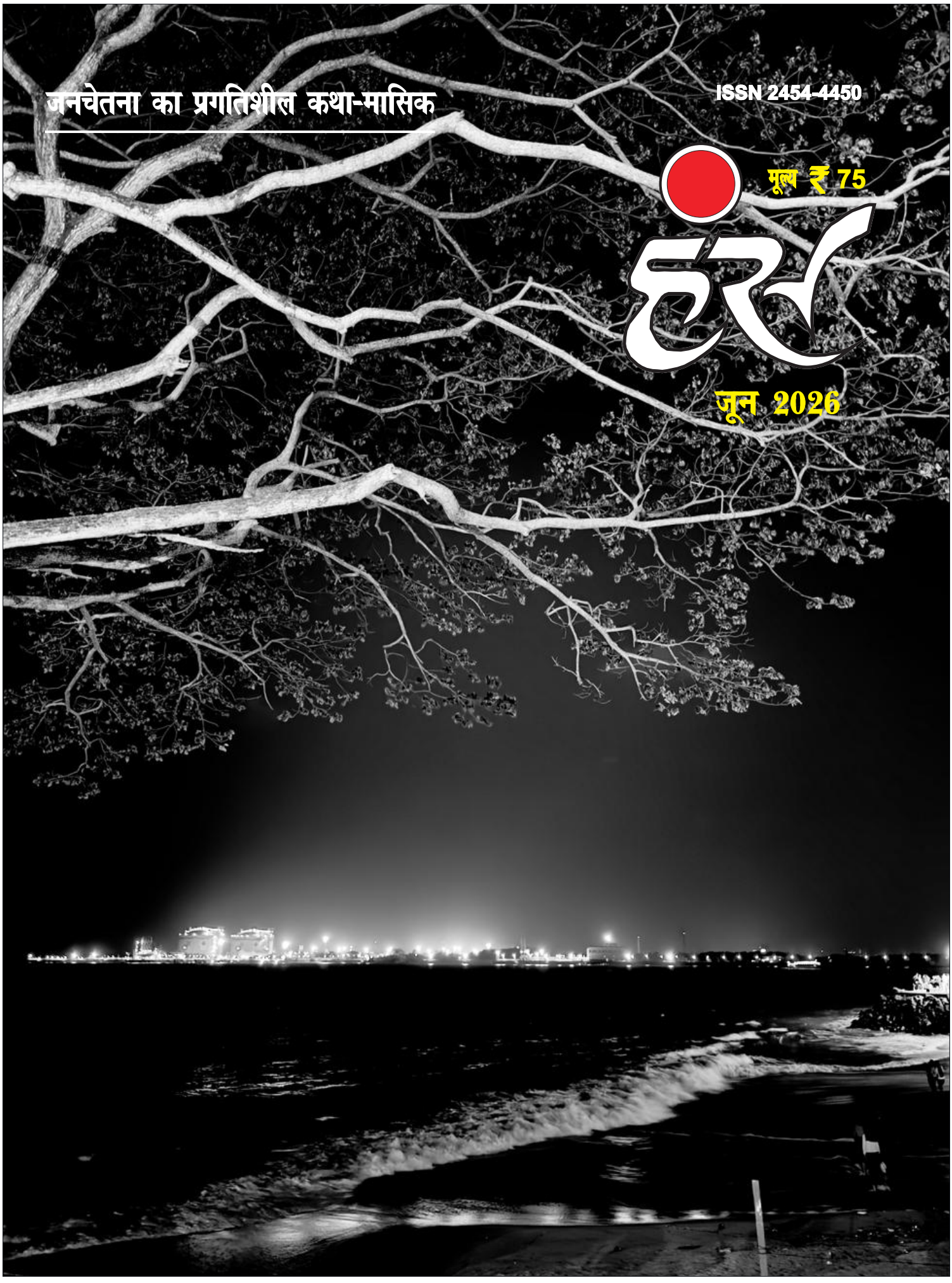

संपादक
संजय सहाय
•
प्रबंध निदेशक
रचना यादव
•
व्यवस्थापक/सह-संपादन सहयोग
वीना उनियाल
•
संपादन सहयोग
शोभा अक्षर
माने मकर्तच्यान
•
प्रसार एवं लेखा प्रबंधक
हारिस महमूद
•
शब्द-संयोजन एवं रूपांकन
प्रेमचंद गौतम
•
ग्राफिक्स
साद अहमद
•
सोशल मीडिया
नाज़रीन
•
कार्यालय सहायक
किशन कुमार, दुर्गा प्रसाद
•
मुख्य प्रतिनिधि (उ.प्र.)
राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल
•
रेखाचित्र
बलविन्द्र सिंह 'बलि', संदीप राशिनकर, रोहित प्रसाद, आस्था

कार्यालय
अक्षर प्रकाशन प्रा. लि.
4229/1, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-2
व्हाट्सऐप : 9717239112, 9560685114
दूरभाष : 011-41050047
ईमेल : editorhans@gmail.com
वेबसाइट : www.hanshindimagazine.in

मूल्य : 75 रुपए प्रति
वार्षिक रजिस्टर्ड : 1250 रुपए (व्यक्तिगत)
संस्था/पुस्तकालय : 1500 रुपए (संस्थागत)
वार्षिक पीडीएफ : 600 रुपए (व्यक्तिगत)
पीडीएफ : 700 रुपए (संस्थागत)
विदेशों में : 80 डॉलर
सारे भुगतान मनीऑर्डर/चैक/बैंक ड्राफ्ट द्वारा अक्षर प्रकाशन प्रा. लि. (Akshar Prakashan Pvt. Ltd.) के नाम से किए जाएं.

हंस/अक्षर प्रकाशन प्रा.लि. से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे. अंक में प्रकाशित सामग्री के पुनर्प्रकाशन के लिए लिखित अनुमति अनिवार्य है. हंस में प्रकाशित रचनाओं में विचार लेखकों के अपने हैं. उनसे हंस की सहमति अनिवार्य नहीं है. साथ ही उनके मौलिक या अप्रकाशित होने का उत्तरदायित्व संपादक और प्रकाशक का नहीं है बल्कि यह दायित्व रचनाकार का है.
प्रकाशक/मुद्रक : **रचना यादव खन्ना** द्वारा अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., 4229/1, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 के लिए प्रकाशित एवं चार दिशाएं, जी-39/40, सेक्टर-3, नोएडा- 201301 (उ.प्र.) से मुद्रित. संपादक–संजय सहाय.

जून, 2026

मूल संस्थापक : **प्रेमचंद : 1930**
पुनर्संस्थापक : **राजेन्द्र यादव : 1986**

पूर्णांक-476 वर्ष : 40 अंक : 11 जून 2026

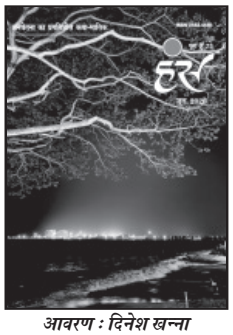

आवरण : दिनेश खन्ना

जनचेतना का प्रगतिशील कथा-मासिक

इस अंक में

संपादकीय
4. तिलचट्टा : संजय सहाय

अपना मोर्चा
6. पत्र

न हन्यते
11. वो शख्स जिसने तस्वीरों में जान फूंकी : पार्थिव शाह
13. दृश्य कभी मरता नहीं : ताराचंद गवारिया

पुस्तक अंश
15. शैलीगत प्रयोगों के फिल्मकार : कुणाल सेन (अनुवाद : मृत्युंजय श्रीवास्तव)

मुड़-मुड़ के देख
19. रफ्तार : दूर्वा सहाय ('हंस', मार्च 1997)

कहानियां
24. पेंटिंग्स ऑफ रामबाग : दीर्घ नारायण
32. नामुराद : समीना खान
40. विगत की व्याधि : प्रियंका ओम
46. कौन सी राह : सिनीवाली
58. कठपुतली : श्यामल भट्टाचार्य (बांग्ला कहानी) (अनुवाद : कुमार शाश्वत)

कविताएं
56. राकेशरेणु, चाहत अन्वी
57. प्रेमा झा, राईनर मारिया रिल्क (अनुवाद : शिप्रा चतुर्वेदी)

संस्मरण
62. अदम्य उत्साही हिंदी-प्रेमी : प्रकाश मनु

उपन्यास अंश-6
72. सोमालिया का यातनाघर : राजेन्द्र चन्द्रकान्त राय

आराम नगर
77. आत्मा का अपहरण : आयुष कुमार पाल

बीच बहस में
80. पार्टनर, हम जानते हैं तुम्हारी पॉलिटिक्स क्या है : फ़रज़ाना महदी

लघुकथा
89. कसौटी : अशोक भाटिया

ग़ज़ल
14. शंभु शरण मंडल
86. मोइज़ उद्दीन 'माजिद'

परख
84. साधारण को असाधारण में बदलने का सामर्थ्य : अरुण होता
87. प्रसूतिगृहों की कथा, जहां पितृसत्ता निर्वसन पड़ी है : योगिता यादव
90. सामूहिक उद्घोष करती कहानियां : निधि अग्रवाल

साहित्यनामा
92. आतम ज्ञान बिना जग झूठा : साधना अग्रवाल

रेतघड़ी
97

तिलचट्टा

इज़राइल, अमेरिका, ईरान, चीन, रूस, होर्मुज़ जलसंधि, प्रधान की जनता पर पटक दी गई किफ़ायत की सात सूत्रीय हिदायतें और उसी सांस में हिदायतों को ठेंगा दिखाते पांच देशों के दौरे, अडानी सेठ का हित, नॉर्वेजियन पत्रकार हेले लिंग का यक्षप्रश्न, मेलोडी-सी मेलोनी की मीठी-मीठी टॉफ़ियां–इन सबको किनारे रख हम बात करते हैं पिछली सदी के युगांतरकारी लेखकों में से एक, ऑस्ट्रो-हंगेरियन साम्राज्य के प्रांतीय केंद्र और बाद में चेकोस्लोवाकिया की राजधानी प्राग के जर्मन भाषी यहूदी फ्रांज़ काफ़्का की. 1883 में जन्मे काफ़्का का साहित्य सामाजिक ढांचे में व्याप्त अतार्किकता और असंगतियों से निकली भयावहता को बहुत ही प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है. काफ़्का का अस्तित्ववाद सार्त्र या कामू से बहुत भिन्न था. वे त्रासद स्थितियों की गहन पड़ताल करते थे, और अकेलेपन, तर्कविहीन अपराधबोध और बेतुकी व्यवस्थाओं के शिकंजे में फंसे व्यक्ति की असहाय दशा को दर्शाते थे. जबकि द्वितीय विश्वयुद्ध और विराट विध्वंस के कारण उभरा सार्त्र का अस्तित्ववाद इस बात को मानता है कि मनुष्य खुद को परिभाषित करने के लिए स्वतंत्र है. कामू इसी बात को मनुष्य की प्रतिरोध की क्षमता से जोड़ते थे. वहीं काफ़्का जो 1924 में तपेदिक के कारण मात्र इकतालीस वर्ष की आयु में दुनिया छोड़ गए थे, के पात्र पीड़ादायक, अनियंत्रित परिस्थितियों से जूझते हुए, खुद को परिभाषित करने की स्वतंत्रता से इतर, जीवन की व्यर्थता को उजागर करते हैं. यहां उनकी दो रचनाओं का उल्लेख करना आवश्यक है. पहली 1912 में लिखी गई और 1915 में प्रकाशित 'मेटामॉर्फ़ोसिस' और दूसरी 1914-1915 में रची गई 'द ट्रायल' जो काफ़्का की मृत्यु के उपरांत 1925 में प्रकाशित हुई.

'मेटामॉर्फ़ोसिस' का मुख्य पात्र ग्रेगोर ज़म्ज़ा एक सुबह उठता है तो खुद को एक विशाल कीड़े में बदला हुआ पाता है(साहित्य जगत में इस कीड़े को एक विशालकाय तिलचट्टे की व्यापक स्वीकृति मिली हुई है). यह काफ़्काएस्क सुर्रियलिज़्म, एब्सर्डिज़्म और एक्ज़िस्टेंशियलिज़्म का खेल अन्य बातों के अलावा काफ़्का के खुद के तपेदिकग्रस्त हो जाने के कारण हुए सामाजिक बहिष्कार से भी उत्प्रेरित हुआ था. अपने ही लोगों द्वारा अस्पृश्य बना दिया गया, भूख, एकाकीपन, अतृप्त यौनेच्छा, शारीरिक और भावनात्मक उपेक्षा और इस बात के अपराधबोध से जूझता कि वह सब पर एक बोझ बन गया है, ग्रेगोर ज़म्ज़ा दम तोड़ देता है. अंत में नौकरानी द्वारा उसकी लाश को एक कचरे की तरह ठिकाने लगा दिया जाता है और सभी बंधु-बांधव राहत की सांस लेते हैं.

इधर चर्चा में बना हुआ तिलचट्टे का बिंब जिन भी हाकिम-हुक्काम के दिमाग़ में उभरा हो, न मालूम उन्होंने फ्रांज़ काफ़्का की 'मेटामॉर्फ़ोसिस' पढ़ी भी है या नहीं, लेकिन यह बात बिल्कुल सही है कि इस देश में बेरोज़गारों की स्थिति उसी ग्रेगोर ज़म्ज़ा की तरह हो जाती है, जिनको समाज एक बोझ मानता है, सीधे मुंह बात नहीं करता, घर में उन्हें ताने सुनने पड़ते हैं, उनके लिए रिश्ते नहीं आते, वह असंतृप्त जीवन जीने को अभिशप्त हो जाते हैं. ऐसे अवसादपूर्ण जीवन के प्रति सहानुभूति न रखना, समाज द्वारा उसे परजीवी के रूप में देखना, उसके साथ तिलचट्टे-सा व्यवहार करना मानवोचित गरिमा का ऐसा पतन है, जिसे महसूस करने के लिए पहले मनुष्य बनना आवश्यक है! इस देश में अपने अधिकारों के लिए सचेत होने वाले और शांतिपूर्ण तरीक़े से अन्याय का प्रतिरोध करने वाले बेरोज़गार युवाओं की तुलना एक घृणित से कॉकरोच या कीड़े-मकोड़ों से करना, उन्हें समाज विरोधी बता देना इस आधुनिक लोकतांत्रिक धर्मनिरपेक्ष गणराज्य का अपमान ही नहीं, गंभीर अपराध भी है!

इस देश में जिस तरह से वैज्ञानिक मिज़ाज को कुचला जा